

श्रीमद्भगवद्गीता



श्रीमद् भगवद् गीता- छठा अध्याय आत्मसंयमयोग

पंडित सुनील वत्स

<https://astrodisha.com>

Whatsapp No: 7838813444

Facebook: <https://www.facebook.com/AstroDishaPtSunilVats>

YouTube Channel : <https://www.youtube.com/c/astrodisha>

Chapter 06- Atmasayam Yog

छठा अध्याय - आत्मसंयमयोग

छठा अध्याय का माहात्म्य | Chapter 06 Mahatmya

श्री भगवान कहते हैं - सुमुखि ! अब मैं छठे अध्याय का माहात्म्य बतलाता हूँ, जिसे सुनने वाले मनुष्यों के लिए मुक्ति करतलगत हो जाती है। गोदावरी नदी के तट पर प्रतिष्ठानपुर (पैठण) नामक एक विशाल नगर है, जहाँ मैं पिप्प्लेश के नाम से विख्यात होकर रहता हूँ। उस नगर में जानश्रुति नामक एक राजा रहते थे, जो भूमण्डल की प्रजा को अत्यन्त प्रिये थे। उनका प्रताप मार्तण्ड-मण्डल के प्रचण्ड तेज के समान जान पड़ता था। प्रतिदिन होने वाले उनके यज्ञ के धुँएँ से नन्दनवन के कल्पवृक्ष इस प्रकार काले पड़ गये थे, मानो राजा की असाधारण दानशीलता देखकर वे लज्जित हो गये हों। उनके यज्ञ में प्राप्त पुरोडाश के रसास्वादन में सदा आसक्त होने के कारण देवता लोग कभी प्रतिष्ठानपुर को छोड़कर बाहर नहीं जाते थे। उनके दान के समय छोड़े हुए जल की धारा, प्रतापरूपी तेज और यज्ञ के धूँओं से पुष्ट होकर मेघ ठीक समय पर वर्षा करते थे। उस राजा के शासन काल में ईतियों (खेती में होने वाले छः प्रकार के उपद्रवों) के लिए कहीं थोड़ा भी स्थान नहीं मिलता था और अच्छी नीतियों का सर्वत्र प्रसार होता था। वे बावली, कुएँ और पोखरे खुदवाने के बहाने मानो प्रतिदिन पृथ्वी के भीतर की निधियों का अवलोकन करते थे। एक समय राजा के दान, तप, यज्ञ और प्रजापालन से संतुष्ट होकर स्वर्ग के देवता उन्हें वर देने के लिए आये। वे कमलनाल के समान उज्ज्वल हंसों का रूप धारण कर अपनी पंख हिलाते हुए आकाशमार्ग से चलने लगे। बड़ी उतावली के साथ उड़ते हुए वे सभी हंस परस्पर बातचीत भी करते जाते थे। उनमें से भद्राश्व आदि दो-तीन हंस वेग से उड़कर आगे निकल गये। तब पीछेवाले हंसों ने आगे जाने वालों को सम्बोधित करके कहा: "अरे भाई भद्राश्व ! तुमलोग वेग से चलकर आगे क्यों हो गये? यह मार्ग बड़ा दुर्गम है। इसमें हम सबको साथ मिलकर चलना चाहिए। क्या तुम्हें दिखाई नहीं देता, यह सामने ही पुण्यमूर्ति महाराज जानश्रुति का तेजपुंज अत्यन्त स्पष्ट रूप से प्रकाशमान हो रहा है? (उस तेज से भस्म होने की आशंका है, अतः सावधान होकर चलना चाहिए।)"

पीछेवाले हंसों के ये वचन सुनकर आगेवाले हंस हँस पड़े और उच्च स्वर से उनकी बातों की अवहेलना करते हुए बोले:- "अरे भाई ! क्या इस राजा जानश्रुति का तेज ब्रह्मवादी महात्मा रैक्व के तेज से भी अधिक तीव्र है?"

हंसों की ये बातें सुनकर राजा जानश्रुति अपने ऊँचे महल की छत से उतर गये और सुखपूर्वक आसन पर विराजमान हो अपने सारथि को बुलाकर बोले: "जाओ, महात्मा रैक्व को यहाँ ले आओ ।" राजा का यह अमृत के समान वचन सुनकर मह नामक सारथि प्रसन्नता प्रकट करता हुआ नगर से बाहर निकला । सबसे पहले उसने मुक्तिदायिनी काशीपुरी की यात्रा की, जहाँ जगत के स्वामी भगवान विश्वनाथ मनुष्यों को उपदेश दिया करते हैं । उसके बाद वह गया क्षेत्र में पहुँचा, जहाँ प्रफुल्ल नेत्रोंवाले भगवान गदाधर सम्पूर्ण लोकों का उद्धार करने के लिए निवास करते हैं । तदनन्तर नाना तीर्थों में भ्रमण करता हुआ सारथि पापनाशिनी मथुरापुरी में गया । यह भगवान श्री कृष्ण का आदि स्थान है, जो परम महान तथा मोक्ष प्रदान कराने वाला है । वेद और शास्त्रों में वह तीर्थ त्रिभुवनपति भगवान गोविन्द के अवतारस्थान के नाम से प्रसिद्ध है । नाना देवता और ब्रह्मर्षि उसका सेवन करते हैं । मथुरा नगर कालिन्दी (यमुना) के किनारे शोभा पाता है । उसकी आकृति अर्द्धचन्द्र के समान प्रतीत होती है । वह सब तीर्थों के निवास से परिपूर्ण है । परम आनन्द प्रदान करने के कारण सुन्दर प्रतीत होता है । गोवर्धन पर्वत होने से मथुरामण्डल की शोभा और भी बढ़ गयी है । वह पवित्र वृक्षों और लताओं से आवृत है । उसमें बारह वन हैं । वह परम पुण्यमय था सबको विश्राम देने वाले श्रुतियों के सारभूत भगवान श्रीकृष्ण की आधारभूमि है ।

तत्पश्चात् मथुरा से पश्चिम और उत्तर दिशा की ओर बहुत दूर तक जाने पर सारथि को काश्मीर नामक नगर दिखाई दिया, जहाँ शंख के समान उज्ज्वल गगनचुम्बी महलों की पंक्तियाँ भगवान शंकर के अट्टहास की शोभा पाती हैं, जहाँ ब्राह्मणों के शास्त्रीय आलाप सुनकर मूक मनुष्य भी सुन्दर वाणी और पर्दों का उच्चारण करते हुए देवता के समान हो जाते हैं, जहाँ निरन्तर होने वाले यज्ञधूम से व्याप्त होने के कारण आकाश-मंडल मेघों से धुलते रहने पर भी अपनी कालिमा नहीं छोड़ते, जहाँ उपाध्याय के पास आकर छात्र जन्मकालीन अभ्यास से ही सम्पूर्ण कलाएँ स्वतः पढ़ लेते हैं तथा जहाँ मणिकेश्वर नाम से प्रसिद्ध भगवान चन्द्रशेखर देहधारियों को वरदान देने के लिए नित्य निवास करते हैं । काश्मीर के राजा मणिकेश्वर ने दिग्विजय में समस्त राजाओं को जीतकर भगवान शिव का पूजन किया था, तभी से उनका नाम मणिकेश्वर हो गया था । उन्हीं के मन्दिर के दरवाजे पर महात्मा रैक्व एक छोटी सी गाड़ी

पर बैठे अपने अंगों को खुजलाते हुए वृक्ष की छाया का सेवन कर रहे थे। इसी अवस्था में सारथि ने उन्हें देखा। राजा के बताये हुए भिन्न-भिन्न चिह्नों से उसने शीघ्र ही रैक्व को पहचान लिया और उनके चरणों में प्रणाम करके कहा: "ब्रह्मण ! आप किस स्थान पर रहते हैं? आपका पूरा नाम क्या है? आप तो सदा स्वच्छंद विचरने वाले हैं, फिर यहाँ किसलिए ठहरे हैं? इस समय आपका क्या करने का विचार है?"

सारथि के ये वचन सुनकर परमानन्द में निमग्न महात्मा रैक्व ने कुछ सोचकर उससे कहा: "यद्यपि हम पूर्णकाम हैं - हमें किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है, तथापि कोई भी हमारी मनोवृत्ति के अनुसार परिचर्या कर सकता है।" रैक्व के हार्दिक अभिप्राय को आदपपूर्वक ग्रहण करके सारथि धीरे-से राजा के पास चल दिया। वहाँ पहुँचकर राजा को प्रणाम करके उसने हाथ जोड़कर सारा समाचार निवेदन किया। उस समय स्वामी के दर्शन से उसके मन में बड़ी प्रसन्नता थी। सारथि के वचन सुनकर राजा के नेत्र आश्चर्य से चकित हो उठे। उनके हृदय में रैक्व का सत्कार करने की श्रद्धा जागृत हुई। उन्होंने दो खच्चरियों से जुती हुई गाड़ी लेकर यात्रा की। साथ ही मोती के हार, अच्छे-अच्छे वस्त्र और एक सहस्र गौँ भी ले लीं। काश्मीर-मण्डल में महात्मा रैक्व जहाँ रहते थे उस स्थान पर पहुँच कर राजा ने सारी वस्तुएँ उनके आगे निवेदन कर दीं और पृथ्वी पर पड़कर साष्टांग प्रणाम किया। महात्मा रैक्व अत्यन्त भक्ति के साथ चरणों में पड़े हुए राजा जानश्रुति पर कुपित हो उठे और बोले: "रे शूद्र ! तू दुष्ट राजा है। क्या तू मेरा वृत्तान्त नहीं जानता? यह खच्चरियों से जुती हुई अपनी ऊँची गाड़ी ले जा। ये वस्त्र, ये मोतियों के हार और ये दूध देने वाली गौँ भी स्वयं ही ले जा।" इस तरह आज्ञा देकर रैक्व ने राजा के मन में भय उत्पन्न कर दिया। तब राजा ने शाप के भय से महात्मा रैक्व के दोनों चरण पकड़ लिए और भक्तिपूर्वक कहा: "ब्रह्मण ! मुझ पर प्रसन्न होइये। भगवन ! आपमें यह अदभुत माहात्म्य कैसे आया? प्रसन्न होकर मुझे ठीक-ठीक बताइये।"

रैक्व ने कहा: राजन ! मैं प्रतिदिन गीता के छठे अध्याय का जप करता हूँ, इसी से मेरी तेजोराशि देवताओं के लिए भी दुःसह है।

तदनन्तर परम बुद्धिमान राजा जानश्रुति ने यत्नपूर्वक महात्मा रैक्व से गीता के छठे अध्याय का अभ्यास किया। इससे उन्हें मोक्ष की प्राप्ति हुई। रैक्व पूर्ववत् मोक्षदायक गीता के छठे अध्याय का जप जारी रखते हुए भगवान मणिकेश्वर के समीप आनन्दमग्न हो रहने लगे। हंस का रूप धारण करके वरदान

देने के लिए आये हुए देवता भी विस्मित होकर स्वेच्छानुसार चले गये | जो मनुष्य सदा इस एक ही अध्याय का जप करता है, वह भी भगवान विष्णु के स्वरूप को प्राप्त होता है - इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है |

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥ | Chapter 06

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।

स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥1॥

श्री भगवान् बोले: जो पुरुष कर्मफल का आश्रय न लेकर करने योग्य कर्म करता है, वह संन्यासी तथा योगी है और केवल अग्नि का त्याग करने वाला संन्यासी नहीं है तथा केवल क्रियाओं का त्याग करने वाला योगी नहीं है |(1)

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।

न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन॥2॥

हे अर्जुन ! जिसको संन्यास ऐसा कहते हैं, उसी को तू योग जान, क्योंकि संकल्पों का त्याग न करने वाला कोई भी पुरुष योगी नहीं होता |(2)

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते॥3॥

योग में आरूढ़ होने की इच्छावाले मननशील पुरुष के लिए योग की प्राप्ति में निष्कामभाव से कर्म करना ही हेतु कहा जाता है और योगारूढ़ हो जाने पर उस योगारूढ़ पुरुष का जो सर्वसंकल्पों का अभाव है, वही कल्याण में हेतु कहा जाता है |(3)

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।

सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥4॥

जिस काल में न तो इन्द्रियों के भोगों में और न कर्मों में ही आसक्त होता है, उस काल में सर्वसंकल्पों का त्यागी पुरुष योगारूढ़ कहा जाता है ।(4)

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥5॥

अपने द्वारा अपना संसार-समुद्र से उद्धार करें और अपने को अधोगति में न डालें, क्योंकि यह मनुष्य, आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है ।(5)

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।

अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥6॥

जिस जीवात्मा द्वारा मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है, उस जीवात्मा का तो वह आप ही मित्र है और जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियों सहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिए वह आप ही शत्रु के सदृश शत्रुता में बरतता है ।(6)

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।

शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः॥7॥

सर्दी-गर्मी और सुख-दुःख आदि में तथा मान और अपमान में जिसके अन्तःकरण की वृत्तियाँ भली भाँति शांत हैं, ऐसे स्वाधीन आत्मावाले पुरुष के ज्ञान में सच्चिदानन्दघन परमात्मा, सम्यक् प्रकार से ही स्थित है अर्थात् उसके ज्ञान में परमात्मा के सिवा अन्य कुछ है ही नहीं ।(7)

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।

युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः॥8॥

जिसका अन्तःकरण ज्ञान विज्ञान से तृप्त है, जिसकी स्थिति विकार रहित है, जिसकी इन्द्रियाँ भली भाँति जीती हुई हैं और जिसके लिए मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण समान हैं, वह योगी युक्त अर्थात् भगवत्प्राप्त है, ऐसा कहा जाता है ।(8)

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।

साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥9॥

सुहृद्, मित्र, वैरी उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य और बन्धुगणों में, धर्मात्माओं में और पापियों में भी समान भाव रखने वाला अत्यन्त श्रेष्ठ है |(9)

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।

एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥10॥

मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश में रखने वाला, आशारहित और संग्रहरहित योगी अकेला ही एकान्त स्थान में स्थित होकर आत्मा को निरन्तर परमात्मा लगावे |(10)

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।

नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजनिकुशोत्तरम्॥11॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।

उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥12॥

शुद्ध भूमि में, जिसके ऊपर क्रमशः कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं, जो न बहुत ऊँचा है न बहुत नीचा, ऐसे अपने आसन को स्थिर स्थापन करके उस आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करे |(11,12)

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।

संप्रेक्ष्यनासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥13॥

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।

मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥14॥

काया, सिर और गले को समान एवं अचल धारण करके और स्थिर होकर, अपनी नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर, अन्य दिशाओं को न देखता हुआ ब्रह्मचारी के व्रत में स्थित, भयरहित तथा भली भाँति शान्त अन्तःकरण वाला सावधान योगी मन को रोककर मुझमें चित्तवाला और मेरे परायण होकर स्थित होवे |(13,14)

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।

शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति॥15॥

वश में किये हुए मनवाला योगी इस प्रकार आत्मा को निरन्तर मुझ परमेश्वर के स्वरूप में लगाता हुआ मुझमें रहने वाली परमानन्द की पराकाष्ठारूप शान्ति को प्राप्त होता है |(15)

नात्याशनतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।

न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥16॥

हे अर्जुन ! यह योग न तो बहुत खाने वाले का, न बिल्कुल न खाने वाले का, न बहुत शयन करने के स्वभाववाले का और न सदा ही जागने वाले का ही सिद्ध होता है |(16)

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥17॥

दुःखों का नाश करने वाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करने वाले का, कर्मों में यथा योग्य चेष्टा करने वाले का और यथायोग्य सोने तथा जागने वाले का ही सिद्ध होता है |(17)

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।

निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा॥18॥

अत्यन्त वश में किया हुआ चित्त जिस काल में परमात्मा में ही भली भाँति स्थित हो जाता है, उस काल में सम्पूर्ण भोगों से स्पृहारहित पुरुष योगयुक्त है, ऐसा कहा जाता है |(18)

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।

योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥19॥

जिस प्रकार वायुरहित स्थान में स्थित दीपक चलायमान नहीं होता, वैसी ही उपमा परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के जीते हुए चित्त की कही गयी है |(19)

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।

यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति॥20॥

सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।

वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥21॥

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।

यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥22॥

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।

स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥23॥

योग के अभ्यास से निरुद्ध चित्त जिस अवस्था में उपराम हो जाता है और जिस अवस्था में परमात्मा के ध्यान से शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा परमात्मा को साक्षात् करता हुआ सच्चिदानन्दघन परमात्मा में ही सन्तुष्ट रहता है। इन्द्रियों से अतीत, केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ग्रहण करने योग्य जो अनन्त आनन्द है, उसको जिस अवस्था में अनुभव करता है और जिस अवस्था में स्थित यह योगी परमात्मा के स्वरूप से विचलित होता ही नहीं। परमात्मा की प्राप्ति रूप जिस लाभ को प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्था में स्थित योगी बड़े भारी दुःख से भी चलायमान नहीं होता। जो दुःखरूप संसार के संयोग से रहित है तथा जिसका नाम योग है, उसको जानना चाहिए। वह योग न उकताए हुए अर्थात् धैर्य और उत्साहयुक्त चित्त से निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है। (23)

संकल्पप्रभवान्कामास्त्यक्तवा सर्वानशेषतः।

मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः॥24॥

शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥25॥

संकल्प से उत्पन्न होने वाली सम्पूर्ण कामनाओं को निःशेषरूप से त्यागकर और मन के द्वारा इन्द्रियों के समुदाय को सभी ओर से भलीभाँति रोककर क्रम-क्रम से अभ्यास करता हुआ उपरति को प्राप्त हो तथा धैर्ययुक्त बुद्धि के द्वारा मन को परमात्मा में स्थित करके परमात्मा के सिवा और कुछ भी चिन्तन न करे। (24,25)

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम्।

ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥26॥

यह स्थिर न रहने वाला और चञ्चल मन जिस-जिस शब्दादि विषय के निमित्त से संसार में विचरता है, उस-उस विषय से रोककर यानी हटाकर इसे बार-बार परमात्मा में ही निरुद्ध करे।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।

उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥27॥

क्योंकि जिसका मन भली प्रकार शान्त है, जो पाप से रहित है और जिसका रजोगुण शान्त हो गया है, ऐसे इस सच्चिदानन्दघन ब्रह्म के साथ एकीभाव हुए योगी को उत्तम आनन्द प्राप्त होता है ।(27)

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥28॥

वह पापरहित योगी इस प्रकार निरन्तर आत्मा को परमात्मा में लगाता हुआ सुखपूर्वक परब्रह्म परमात्मा की प्राप्तिरूप अनन्त आनन्द का अनुभव करता है ।(28)

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥29॥

सर्वव्यापी अनन्त चेतन में एकीभाव से स्थितिरूप योग से युक्त आत्मावाला तथा सबमें समभाव से देखने वाला योगी आत्मा को सम्पूर्ण भूतों में स्थित और सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में कल्पित देखता है ।(29)

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥30॥

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतों में सबके आत्मरूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है, उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिए अदृश्य नहीं होता ।(30)

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।

सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥31॥

जो पुरुष एकीभाव में स्थित होकर सम्पूर्ण भूतों में आत्मरूप से स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव को भजता है, वह योगी सब प्रकार से बरतता हुआ भी मुझ में ही बरतता है ।(31)

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।

सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥32॥

हे अर्जुन ! जो योगी अपनी भाँति सम्पूर्ण भूतों में सम देखता है और सुख अथवा दुःख को भी सबमें सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है ।(32)

॥ अर्जुन उवाच ॥

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।

एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिराम्॥33॥

अर्जुन बोले: हे मधुसूदन ! जो यह योग आपने समभाव से कहा है, मन के चंचल होने से मैं इसकी नित्य स्थिति को नहीं देखता हूँ ।(33)

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्।

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥34॥

क्योंकि हे श्री कृष्ण ! यह मन बड़ा चंचल, प्रमथन स्वभाव वाला, बड़ा दृढ़ और बलवान है । इसलिए उसका वश में करना मैं वायु को रोकने की भाँति अत्यन्त दुष्कर मानता हूँ ।

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥35॥

श्री भगवान् बोले: हे महाबाहो ! निःसंदेह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है परन्तु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! यह अभ्यास और वैराग्य से वश में होता है ।(35)

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।

वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥36॥

जिसका मन वश में किया हुआ नहीं है, ऐसे पुरुष द्वारा योग दुष्प्राप्य है और वश में किये हुए मनवाले प्रयत्नशील पुरुष द्वारा साधन से उसका प्राप्त होना सहज है - यह मेरा मत है ।(36)

॥ अर्जुन उवाच ॥

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।

अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति॥37॥

अर्जुन बोले: हे श्रीकृष्ण ! जो योग में श्रद्धा रखने वाला है, किंतु संयमी नहीं है, इस कारण जिसका मन अन्तकाल में योग से विचलित हो गया है, ऐसा साधक योग की सिद्धि को अर्थात् भगवत्साक्षात्कार को न प्राप्त होकर किस गति को प्राप्त होता है ||(37)

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।

अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि॥38॥

हे महाबाहो ! क्या वह भगवत्प्राप्ति के मार्ग में मोहित और आश्रयरहित पुरुष छिन्न-भिन्न बादल की भाँति दोनों ओर से भ्रष्ट होकर नष्ट तो नहीं हो जाता?(38)

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः।

त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते॥39॥

हे श्रीकृष्ण ! मेरे इस संशय को सम्पूर्ण रूप से छेदन करने के लिए आप ही योग्य हैं, क्योंकि आपके सिवा दूसरा इस संशय का छेदन करने वाला मिलना संभव नहीं है ||(39)

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।

न हि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति॥40॥

श्रीमान् भगवान् बोले: हे पार्थ ! उस पुरुष का न तो इस लोक में नाश होता है और न परलोक में ही क्योंकि हे प्यारे ! आत्मोद्धार के लिए अर्थात् भगवत्प्राप्ति के लिए कर्म करने वाला कोई भी मनुष्य दुर्गति को प्राप्त नहीं होता ||(40)

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥41॥

योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानों लोकों को अर्थात् स्वर्गादि उत्तम लोकों को प्राप्त होकर, उनमें बहुत वर्षों तक निवास करके फिर शुद्ध आचरणवाले श्रीमान् पुरुषों के घर में जन्म लेता है ||(41)

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।

एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥42॥

अथवा वैराग्यवान् पुरुष उन् लोकों में न जाकर ज्ञानवान् योगियों के ही कुल में जन्म लेता है । परन्तु इस प्रकार का जो यह जन्म है, सो संसार में निःसंदेह अत्यन्त दुर्लभ है ।(42)

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।

यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन॥43॥

वहाँ उस पहले शरीर में संग्रह किये हुए बुद्धि-संयोग को अर्थात् रामबुद्धि रूप योग के संस्कारों को अनायास ही प्राप्त हो जाता है और हे कुरुनन्दन ! उसके प्रभाव से वह फिर परमात्मा की प्राप्तिरूप सिद्धि के लिए पहले से भी बढ़कर प्रयत्न करता है ।(43)

पूर्वाभ्यासेन तेनैव हियते ह्यवशोऽपि सः।

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते॥44॥

वह श्रीमानों के घर जन्म लेने वाला योगभ्रष्ट पराधीन हुआ भी उस पहले के अभ्यास से ही निःसंदेह भगवान् की ओर आकर्षित किया जाता है तथा समबुद्धिरूप योग का जिज्ञासु भी वेद में कहे हुए सकाम कर्मों के फल को उल्लंघन कर जाता है ।(44)

प्रयत्नाद्यातमानस्तु योगी संशुद्धिकिल्बिषः।

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्॥45॥

परन्तु प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करने वाला योगी तो पिछले अनेक जन्मों के संस्कारबल से इसी जन्म में संसिद्ध होकर सम्पूर्ण पापों से रहित हो फिर तत्काल ही परम गति को प्राप्त हो जाता है ।(45)

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥46॥

योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है, शास्त्रज्ञानियों से भी श्रेष्ठ माना गया है और सकाम कर्म करने वालों से भी योगी श्रेष्ठ है इससे हे अर्जुन तू योगी हो ।(46)

योगिनामपि सर्वेषां मद् गतेनान्तरात्मना।

श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥47॥

सम्पूर्ण योगियों में भी जो श्रद्धावान योगी मुझमें लगे हुए अन्तरात्मा से मुझको निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है ।(47)

॥ ॐ तत्सदिति श्रीमद् भगवद् गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

इस प्रकार उपनिषद्, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्रम् श्रीमद् भगवद् गीता के
श्री कृष्ण-अर्जुन संवाद में 'आत्मसंयमयोग नामक छठा अध्याय संपूर्ण हुआ

॥

पहला अध्याय - अर्जुनविषादयोग

<https://astrodisha.com/chapter-01-arjun-vishada-yoga-shrimad-bhagwat-gita-download-free-pdf/>

दूसरा अध्याय – सांख्ययोग

<https://astrodisha.com/chapter-02-sankhya-yoga-shrimad-bhagwat-gita-download-free-pdf/>

तीसरा अध्याय – कर्मयोग

<https://astrodisha.com/chapter-03-karma-yoga-shrimad-bhagwat-gita-download-free-pdf/>

चौथा अध्याय – ज्ञानकर्मसंन्यासयोग

<https://astrodisha.com/chapter-04-jnanakarma-sanyasa-shrimad-bhagwat-gita-download-free-pdf/>

पाँचवाँ अध्याय – कर्मसंन्यासयोग

<https://astrodisha.com/chapter-05-karma-sannyasa-yoga-shrimad-bhagwat-gita-download-free-pdf/>

छठा अध्याय – आत्मसंयमयोग

<https://astrodisha.com/chapter-06-atmasayam-yog-shrimad-bhagwat-gita-download-free-pdf/>

सातवाँ अध्याय – ज्ञानविज्ञानयोग

<https://astrodisha.com/chapter-07-gyan-vigyan-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/>

आठवाँ अध्याय – अक्षरब्रह्मयोग

<https://astrodisha.com/chapter-08-aksharbrahma-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/>

नौवाँ अध्याय – राजविद्याराजगुह्ययोग

<https://astrodisha.com/chapter-09-rajavidyaraajguhya-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/>

दसवाँ अध्याय – विभूतियोग

<https://astrodisha.com/chapter-10-vibhuti-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/>

ग्यारहवाँ अध्याय - विश्वरूपदर्शनयोग

<https://astrodisha.com/chapter-11-vishwaroop-darshan-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/>

बारहवाँ अध्याय - भक्तियोग

<https://astrodisha.com/chapter-12-bhakti-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/>

तेरहवाँ अध्याय - क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग

<https://astrodisha.com/chapter-13-kshetra-kshetra-vibhag-yog-bhagwat-gita-download-free-pdf/>

चौदहवाँ अध्याय – गुणत्रयविभागयोग

<https://astrodisha.com/chapter-14-gunatray-vibhaga-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/>

पंद्रहवाँ अध्याय – पुरुषोत्तमयोग

<https://astrodisha.com/chapter-15-purushottama-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/>

सोलहवाँ अध्याय – दैवासुरसंपद्विभागयोग

<https://astrodisha.com/chapter-16-daivasurasampadvibhaga-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/>

सत्रहवाँ अध्याय – श्रद्धात्रयविभागयोग

<https://astrodisha.com/chapter-17-shraddhatray-vibhaga-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/>

अठारहवाँ अध्याय – मोक्षसंन्यासयोग

<https://astrodisha.com/chapter-18-moksha-sannyasa-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/>

पंडित सुनील वत्स

Website : <https://astrodisha.com>

Whatsapp No : +91- 7838813444

Contact No: +91-7838813 - 444 / 555 / 666 / 777

Facebook : <https://www.facebook.com/AstroDishaPtSunilVats>

YouTube Channel : <https://www.youtube.com/c/astrodisha>